पंडित मधुसूदन ओझा का खगोल विज्ञान

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

वेदशास्त्र में पृथ्वी का घूमना और पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य का स्थिर रहना माना गया है। इस विषय का विशेष विवेचन अस्मद्रचित ''अहोरात्रवाद'' में देखना चाहिये। यह पृथ्वी जिस अपने निश्चित मार्ग पर सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है, उसे ''**क्रान्तिवृत्त**'' कहते हैं। अर्थात् यह पृथ्वीपिण्ड सूर्य को केन्द्र बनाकर जिस वृत्त पर चारों ओर चक्कर लगाता है, वह ''**क्रान्तिवृत्त**'' कहलाता है। परिभ्रमणवृत्त के बीचोंबीच एक रेखा की कल्पना की गई है, जिसे वेद में ''**बृहति (वृत्त)**'' छन्द और ज्योतिष में बिषुववृत्त तथा अंग्रेजी में इक्केटरलाइन (Equator Line) कहते हैं। सूर्य इसी बिषुववृत्त के, जिसे बृहतीवृत्त भी कहते हैं, मध्य में तपता है। अत एव वेद में यह कहा गया है।

''सूर्यो बृहतिमध्यूढस्तपति'' तथा ''स वा एष संवत्सरो बृहतिमभिसंपन्नः''

(शत. 12/7/1)

यहाँ यह सूर्य में कितना प्रचंड उष्णत्व है; इसका अनुमान करना भी दुरूह है। सूर्य से आई हुई उष्णता का पृथ्वी पर लगभग चार खरबवाँ अंश है। आधुनिक वैज्ञानिकों का मत है कि सौर-जगत् में जितनी उष्णता फेंकी जाती है, उसका दश करोड़वाँ हिस्सा ग्रहों को मिलता है। इस प्रचण्डमार्तण्ड की उष्णता से हम लोग भस्मसात् क्यों नहीं हो जाते, इसका एक मात्र कारण यही है कि हम सूर्य से करीब 1,16,12,500 योजन के फासले पर हैं। अस्तु, हमें बताना यही था कि यह सहस्रदीधिति भगवान् अपने पूर्णतेज से इस विषुववृत्त के मध्य में तपते हैं। खगोल इस विषुवत् से आधा उत्तर में और आधा दक्षिण में है। इसके उत्तर भाग में 12,8,4 क्रमशः इन अंशों के अन्तर पर क्रान्तिवृत्त को काटते हुये तीन पूर्वापर वृत्त बनते हैं और इसी तरह इस विषुवत् के दक्षिण भाग में क्रान्तिवृत्त को काटते हुए 12,8 और 4 अंशों के अन्तर पर क्रमशः तीन पूर्वापर वृत्त बनते हैं। इस प्रकार कुल 6 पूर्वापर वृत्त बन जाते हैं, सातवाँ स्वयं विषुवत् है। इस तरह सब मिलाकर सात पूर्वापर वृत्त हो जाते हैं। इन्हीं को अहोरात्रवृत्त कहते हैं। ये ही सातों वेद में गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती- इन छन्दों के नाम से सर्य के सात घोडे प्रसिद्ध हैं। क्रान्तिवत्त नाम का सूर्य के रथ का एक पहिया है। छन्दः और वृत्त ये दोनों शब्द एकार्थवाची हैं, अतः सप्तछन्द ये दोनों ही शब्द प्रयोग में आते हैं। उत्तर में सबसे बडा जगती और

दक्षिण में सबसे छोटा गायत्री-छन्द नाम का घोडा है, बीच वाला बृहतीछन्द सबसे बड़ा है। यद्यपि मध्य का बृहतीछन्द (विषुववृत्त) सबसे बड़ा है, एवं दक्षिण तथा उत्तर के छन्द एक दूसरे के बराबर हैं, तथापि दृश्यमण्डल के अनुरोध से जगती को सबसे बड़ा और गायत्री को सबसे छोटा माना है। छन्द: की अक्षरगणना से भी देखा जाय तो जगतीछन्द 48 अक्षरों का और गायत्रीछन्द 24 अक्षरों का ही होता है।

अस्तु, हमें यहाँ इस वैदिक प्रणाली के विवेचन करने की आवश्यकता नहीं। हमें तो बताना यही था कि क्रान्तिवृत्त को काटते हुए जो सात पूर्वापर वृत्त बनते हैं, इनको खगोल विद्या में क्रम से कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन और मकरवृत्त कहते हैं। इनमें उत्तर भाग का सबसे आखिरी कर्कवृत्त कहलाता है और दक्षिण भाग का सबसे अन्तिम मकरवृत्त नाम से प्रसिद्ध है। इसी के संबन्ध से मकरसंक्रान्ति होती है। हम ऊपर लिख आए हैं कि विषुववृत्त से उत्तर और दक्षिण में 12, 8 और 4 अंशों के अन्तर पर तीन-तीन पूर्वापर वृत्त बनते हैं। इन वृत्तों के सब अंशों को यदि जोड़ लिया जाय तो दोनों भागों के कुल मिलकर 48 अंश हो जाते हैं। इस 48 अंशात्मक भाग की आखिरी सीमा को घेरता हुआ जो दीर्घवृत्त बनता है इसे ही ऊपर बताया हुआ क्रान्तिवृत्त समझना चाहिये। अश्विनी आदि 28 नक्षत्र तथा बुध, बृहस्पति, शुक्र प्रभृति ग्रहराशिगण इसी 48 अंश के परिसर के भीतर घूमा करते हैं। इन 28 नक्षत्रों में अभिजित् संधिभाग में पड़ जाता है। अत: कुल 27 नक्षत्र माने जाते हैं। ये नक्षत्र दक्षिण भाग में छोटे, मध्य भाग में मध्यम और उत्तर भाग में स्थूल हैं। ये अश्विन्यादि 28 नक्षत्र जिस वृत्त पर हैं, उस चान्द्रकक्षा को 'दक्षवृत्त' कहते हैं। दशों दिशाओं से प्रस्तुत 'प्रचेता' नामक रसों के संयोग से पैदा होने वाला दिक्सोममय प्राचेतसप्राण 'दक्ष' कहलाता है। इस दक्ष के 60 कन्यायें हैं। ''अग्निर्वृषा, योषा सोमः'' इस परिभाषानुसार योषारूप प्राणसमूह दक्षवृत्त के 60 हिस्से ही 60 कन्या मानी गई हैं। अत एव ''ददौ स दश धर्माय, कश्यपाय त्रयोदश'' इत्यादि पौराणिक वचनानुसार पृथक् पृथक् धर्म-कश्यपादि योषा प्राण के उपयोगानुरोध से सौम्य-प्राणमय यह दक्षवृत्त 27, 10, 13, 2, 2, 2, 4 इन सात विभागों में विभक्त हैं। चन्द्रमा के अनुरोध से 27 विभाग ही अश्विनी आदि 27 नक्षत्र समझने चाहिए। अरिष्ट के हिसाब से इस नक्षत्र मण्डल के 4 विभाग किए गए हैं। जैसा कि वेद में कहा है–

''स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्योऽरिष्टनेमिः स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातुः।।''

यहाँ वृद्धश्रवा से चित्रा नक्षत्र अभिप्रेत है, जो कि पूर्व खस्वस्तिक माना गया है। पूषा रेवती

है, यह पश्चिम खस्वस्तिक है। उत्तर खस्वस्तिक तार्क्ष्य है। **'त्रयाणां ऋक्षाणां समूहस्तार्क्ष्यम्'** तीन नक्षत्रों के समूह को तार्क्ष्य कहते हैं, यह तार्क्ष्य श्रवणतारा है। इसी प्रकार दक्षिण खस्वस्तिक बृहस्पति (लुब्धक बन्धु) है। इन चार खस्वस्तिक में संपूर्ण नक्षत्र मण्डल विभक्त हैं। यह एक दूसरा नक्षत्रसन्निवेश का क्रम है। इसी तरह यह मण्डल दैव और आसुर भेद से भी विभक्त है। इस क्रम में अश्विनी से चित्रा तक देवमंडल है। इसमें उत्पन्न हुआ प्राणी दैवी संपत्तिवान् होता है। जैसा कि गीता में लिखा है–

दैवीसंपद् विमोक्षाय, बन्धनायासुरी मता।
दैवीसंपत्तिमभिजातोऽसि। इत्यादि।।

यज्ञजन्य दैवात्मा का स्वरूप यथावत् सिद्ध करने के लिए यज्ञ यागादि दैविक कार्य इसी दैवमण्डल में करने चाहिए। इसीलिये यजमान यज्ञारंभ में- "**अश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां त्वाऽऽददे नार्य्यसि**" यह मन्त्र पढ़ कर दैवमण्डल को ध्यान में लाता है।

इस दैवमण्डल के प्रतिपक्ष में विशाखा से भरणी तक आसुरमण्डल है। अत: इसमें आसुरमण्डल की प्रधानता है। इसमें उत्पन्न हआ प्राणी आसुरसंपत्ति की प्रधानता से क्रूरकर्मा होता है। मारणोच्चाटनादि तंत्रोक्त क्रूरकार्य इसीलिये इस मण्डल में किये जाते हैं।

ये कुल नक्षत्र 1- तारानक्षत्र 2- ताराव्यूहनक्षत्र 3- खदेशनक्षत्र 4- गतिनक्षत्र और 5- सांपातिकनक्षत्र इन भेदों से पाँच प्रकार के होते हैं।

1-जिस नक्षत्र पर वसन्तसंपात होता हो उससे शुरू करके, जितनी प्रतिदिन की चंद्रगति होती है उतनी दूर के प्रदेश को सांपातिक नक्षत्र कहते हैं। ये 28 नक्षत्र होते हैं। इस संपात बिन्दु के अस्थिर होने के कारण यह नक्षत्र प्रदेश का विभाग अस्थिर समझा गया है। क्योंकि शतपथ निर्माणकाल में कृत्तिका नक्षत्र पर वसंतसंपात माना गया है, इसके बाद कौषितक-ब्राह्मण के रचनाकाल में रोहिणी पर वसंतसंपात समझा गया, फिर किसी समय पर मृगशिर-नक्षत्र पर वसन्तसंपात माना जाने लगा और अब आजकल कृत्तिका से 5 नक्षत्र हट कर उत्तरा-भाद्रपद पर यह वसन्तसंपात माना जाता है। जिस समय जहां से संपात होता है, वहीं से वर्षारंभ होता है। यह हुआ सांपातिक नक्षत्रों का क्रम।

2- दूसरे गतिनक्षत्र हैं, ये प्रतिदिन की चान्द्रगति के प्रदेश के हिसाब से 27 माने जाते हैं, क्योंकि इसमें अभिजित्नक्षत्र के प्रदेश के अत्यल्प रह जाने के कारण यह गणना की गई है।

3-यदि किसी नियत बिन्दु से नियताकाश को सम विभाग से नियत परिमाण में विभक्त किया जाय तो उस नियत प्रदेश में रहने वाले नक्षत्र को खदेश नक्षत्र कहेंगे। जैसे कि 13 अंश

20 कला के प्रदेश को नक्षत्र मानकर रेवत्यन्त अंशावच्छिन्न प्रदेश से क्रान्तिवृत्त के 180 अंश की कल्पना करके 28 विभागों में विभक्त किया जाय तो उस नियत प्रदेश में स्थित नक्षत्रों को खदेश नक्षत्र कहेंगे। नियताकाश में स्थित रहने के कारण ये स्थिर नक्षत्र कहलाते हैं।

4-असंख्य ताराओं में तत्तन्नक्षत्रों को पहिचानने के लिए तत्तन्नक्षत्र समष्टि से कल्पित मूर्तिमय नक्षत्रव्यूह को ताराव्यूह कहते हैं। जैसे तीन तारा वाले अश्विनी नक्षत्र को पहिचानने के लिये अश्वमुखाकृति की कल्पना कर ली गई है। इसी तरह भरणी, कृत्तिका आदि में भी समझ लेना चाहिये।

5-अनेक ताराओं से कल्पित ताराव्यूह में रहने पर भी इन प्रत्येक ताराओं का योगतारा एक ही माना जाता है। इस योगतारा को तारानक्षत्र कहते हैं, जैसे शतभिषा के सौ तारे होने पर भी उसका योगतारा एक शतभिषा माना जाता है। इस तरह यह नाक्षत्रिक विभाग समझना चाहिये।

इन नक्षत्रों को समझाने के लिये आचार्यों ने ज्यौतिषशास्त्र में पूर्वोक्त विषुवद्वृत्त के दक्षिणोत्तर में 12, 8, 4 अंशों के अन्तर पर बने हुए तीन तीन पूर्वापर वृत्तों के 48 अंश वाले मार्ग के तीन मार्ग बना डाले हैं- 1- ऐरावत, 2- जरगव और 3- वैश्वानर। ये तीन मार्ग बड़े हैं। इनमें तीन तीन नक्षत्रों के हिसाब से फिर 6 छोटे मार्ग बनाए गये हैं जिन्हें वीथियाँ (गलियाँ) कहते हैं। ये ही 6 वीथियाँ 6 नाड़ीवृत्त हैं। जिस प्रकार सूर्यरथ का संबन्ध सात पूर्वापर अहोरात्र-वृत्तों से है उसी तरह चन्द्रमा के रथ का संबन्ध इन 6 नाड़ी वृत्तों से है। इन वीथियों के नाम तथा इनमें नक्षत्रों का सन्निवेशक्रम इस प्रकार है -

1-भरणी, कृत्तिका, स्वाति की नागवीथी; 2-रोहिणी, मृगशिर, आर्द्रा की गजवीथी; 3-पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा की ऐरावतवीथी; 4-मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी की वृषवीथी; 5-पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी की गोवीथी 6-श्रवण, घनिष्ठा, शतभिषा की जारद्रववीथी; 7-अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल की मृगवीथी; 8-हस्त, चित्रा, विशाखा की अजवीथी; और ह-पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़ की वैश्वानरवीथी होती है। क्रान्तिवृत्त के दक्षिण भाग की आखिरी सीमा वैश्वानरवीथी है और क्रान्तिवृत्त के उत्तर भाग की आखिरी सीमा नागवीथी समझनी चाहिये। इन ऊपर बताई हई नाग, ऐरावत. गज इन तीन वीथियों का उत्तरमार्ग; वृष, गो, जारद्व-इन वीथियों का मध्यमार्ग और मृग, अज, वैश्वानर इन वीथियों का दक्षिणमार्ग है। इन प्रत्येक मार्ग की तीन तीन वीथियों में भी पहिलीवीथी उस मार्ग के उत्तर में, दूसरी उस मार्ग के मध्य में और तीसरी उस मार्ग के दक्षिण में समझनी चाहिये। क्रान्तिवृत्त के उत्तर भाग में 42 अंश का अन्तरिक्ष धर्मशास्त्र पुराण आदि में वर्णित देवयान' मार्ग है। इस के आगे ही सप्तर्षिमण्डल की स्थिति है। विषुवरेखा से 60 अंश उत्तर

की ओर उत्तरीय ध्रुव की स्थिति है और उसी रेखा से 60 अंश दक्षिण की ओर दक्षिण ध्रुव की स्थिति है। यह सप्तर्षिमण्डल इस उत्तरीय ध्रुव से 24 अंश के अन्तर पर घूमता है। यहां तक कि देवयान की स्थिति समझनी चाहिये। वैश्वानर की वीथी क्रान्तिवृत्त की अन्तिम सीमा है। इसके आगे 42 अंशात्मक पितृयाण' मार्ग है। दक्षिणध्रुव से 24 अंश उत्तर की ओर अगस्त्य का तारा है, इस अगस्त्यतारा से उत्तर एवं वैश्वानरवीथी से दक्षिण पितृयाण की स्थिति समझनी चाहिये। इसीलिये भगवान् वेदव्यास लिखते हैं -

उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम्।
पितृयाणः स वै पन्था वैश्वानरपथाद् बहिः।।
नागवीथ्युत्तरं यच्च सप्तर्षिभ्यश्च दक्षिणम्।
उत्तरः सवितुः पन्था देवयान इति स्मृतः।।इति।

अस्तु। विषय का विस्तार बहुत बढ़ गया, अतः इस प्रकरण को यहां ही समाप्त करते हैं। हमें केवल यही बताना था कि वृष्टि-विद्या संबंधी निमित्तशास्त्र में प्रवेश करने के पूर्व ग्रह नक्षत्र प्रभृति की स्थिति जान लेना अत्यावश्यक है, जिसका कि कुछ दिग्दर्शन हमने पाठकों के सौकर्य के लिये यहां कर दिया है।

प्राचार्यचरः,
श्री दादू आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर